उच्च शिक्षा - आकांक्षा और संभावनाओं का अर्थशास्त्र

सिमटती राज्य पोषित शिक्षा सुविधाओं और आसमान छूती फीस के दौर में

रवीन्द्र गोयल

साल का वो समय फिर आ गया है जब हर वो अभिभावक जिसके बेटा या बेटी न कक्षा 12 की परीक्षा दी है और परीक्षा देने वाला युवा मन स्कूल के उपरान्त आगे की पढ़ाई की आकांक्षा और पढ़ाई की संभावनाओं के बीच तालमेल बैठाने की कवायद में उलझा है। स्तरीय उच्च शिक्षा न केवल गरीबी से मुक्ति का महत्वपूर्ण मार्ग है बल्कि एक अर्थपूर्ण जीवन की कुंजी भी। उच्च शिक्षा के सामाजिक फायदों को यदि छोड़ भी दिया जाये आज की सेवा आधारित अर्थव्यवस्था में सार्थक भूमिका अदा करने के लिए कम से कम बी ए। की डिग्री तक पढाई हर युवक युवती के लिए अनिवार्य है।

1948 के स्वतंत्र भारत के पहले शिक्षा आयोग की रिर्पोट में, आयोग अध्यक्ष डा। एस राधाकृष्णन ने शिक्षा के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लिखा था कि "भावी पीढ़ी की उच्चतर शिक्षा को हमें अपनी सर्वोच्च प्राथमिकताओं में रखना चाहिए।" साठ के दशक में डा। डी एस कोठारी की अध्यक्षता में गठित अगले शिक्षा आयोग ने भी इस आकांक्षा को ठोस रूप देने के लिए अपनी रिपोर्ट में सकल घरेलू उत्पाद का छह प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करने की अपील की।

लेकिन दुनिया में सबसे तेज विकास करने वाले देश की नई सदी में शिक्षा सुविधा के मामले में हालत बहुत दयनीय है। पिछले कुछ सालों में शिक्षा पर किया जानेवाला खर्च सरकारी खर्च (केंद्र और राज्य सरकार दोनों का) राष्ट्रीय आय की तुलना में लगातार घटता जा रहा है। आज शिक्षा पर खर्च किया जा रहा सरकारी खर्च साथ के दशक में कोठारी आयोग द्वारा सुझाये गए 6 प्रतिशत का आधा भी नहीं हैं। उससे काफी कम है।

साल	शिक्षा पर खर्च राष्ट्रीय आय का%
2012- 13	3।1%
2014- 15	2।8%
2015- 16	2।4%
2016- 17	2।6%

स्रोत- आर्थिक सर्वेक्षण 2017-18

सरकार, शिक्षा में कम खर्च का ठीकरा अपने पास साधनों की कमी के सर पर फोड़ती रही है। कोई इनसे पूछे की बैंकों को उद्योगपतियों की ?? मागों के लिए दिए जाने वाले 2 लाख करोड़ रूपया कहाँ से आ गए या धन्ना सेठों पर और अधिक कर लगाने से उनको कौन रोकता है। जानकारी हो की उनके लेखे आदर्श अर्थव्यवस्था, अमरीका, में भी अधिकतम आयकर 40% से ऊपर है फिर हम क्यों 30% से ऊपर नहीं जा सकते।

शिक्षा पर घटते सरकारी खर्च और अर्थव्यवस्था में आये परिवर्तनों ने इस देश की युवा पीढ़ी के सामने विकट परिस्थिति खड़ी कर दी है। हमारा देश पिछले 70 बरसों में मूलत: कृषि आधारित अर्थव्यस्था से सेवा आधारित व्यवस्था में बदल गया है। शिक्षित व्यक्तियों की जरूरत और भी ज्यादा बढ़ गयी है। आज हम ज्ञान आधारित भविष्य की अर्थव्यस्था में अपनी युवा जनसँख्या के आधार पर लाभान्वित होने के सपने पाल रहे हैं, लेकिन हमारे यहाँ उच्च शिक्षा की सुविधाएँ बहुत सीमित हैं। सरकारी आंकड़ों से पता चलता है की कॉलेज जाने

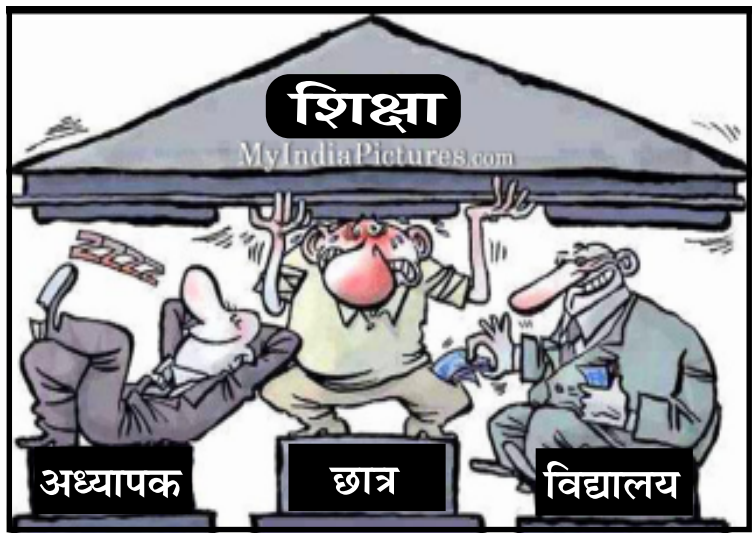

वाली आयु के युवाओं (18 -23 वर्ष की आयु के बीच के नौजवान) में से केवल 20-21 प्रतिशत युवा ही कॉलेजों में पढ़ रहे हैं। यानि के देश के 18-23 वर्ष की आयु के बीच के नौजवानों का तकरीबन 80 प्रतिशत हिस्सा उस शिक्षा से महरूम हैं जो उनके लिए अनिवार्य है। नतीजा, अपने आपको आज के जमाने के हिसाब से सक्षम बनाने के लिए नौजवान इधर उधर धक्के खा रहे हैं और शिक्षा लुटेरों का धंधा चल निकला है। उनके धंधे को चमकाने के लिए अब तो सरकारी शिक्षण संस्थाओं में भी फीस बढ़ोतरी का अभियान बड़े जोर शोर से जारी है।

सवाल उठता है कि ऐसा क्यों हुआ। आज जब समाज में स्तरीय और गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा की जरूरत सबसे ज्यादा है और शोध दर्शाता है की यह कार्य बहुजन के हित में राज्य पोषित शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है, सरकार ने शिक्षा से अपना हाथ खींच कर यह काम भिन्न-भिन्न रंग की दुकानों पर छोड़ दिया है। शिक्षा के काम को भिन्न भिन्न रंग की दुकानों पर छोड़ देने का काम क्रमश: संपन्न किया गया है। स्कूली शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने का काम तो 60 के दशक में ही शुरू हो गया था और अब पूरा हो चुका है। अब उच्च शिक्षा की बारी है। यह नीति इस देश नौजवानों को किस अंधी गली में धकेलेगी इस पर चर्चा से पहले यह जान लेना अच्छा होगा की आज विश्व में कहाँ शिक्षा सबसे अच्छी स्थिति में है और इसका मुख्य कारण क्या है।

आज दुनिया में सबसे अच्छी शिक्षा व्यवस्था क्यूबा की मानी जाती है जो शिक्षा पर अपने सकल घरेलू उत्पाद का 13 प्रतिशत खर्च करता है। 1959 में, क्रांति के उपरांत,उसने सबसे पहले कदम के रूप में प्राइवेट स्कूल और कॉलेजों का राष्ट्रीयकरण किया। अब शिक्षा वहां पूर्णतय: राज्य पोषित है और पूर्णतया मुफ्त है। शिक्षा पर उचित जोर देने के चलते क्यूबा ने दुनिया को दिखा दिया है की उच्च स्तर का ज्ञान और प्रशिक्षण सभी नागरिकों को उपलब्ध कराना संभव है। विश्व बैंक (जिसे किन्ही भी अर्थों में वामपंथी नहीं कहा जा सकता) ने भी अपनी 2014 की एक रिपोर्ट में स्वीकारा की आज क्यूबा में लैटिन अमेरिका और कैरेबियन के देशों में सबसे अच्छी शिक्षा प्रणाली है और मजबूत शैक्षिक प्रतिभा, उच्च मजदूरी और उच्च पेशेवर स्वायत्तता उसकी विशेषताएँ हैं। भारत में उच्च शिक्षा के लिए सरकारी बजट में कटौती, शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार में रोक लगा कर शिक्षा को नए पुराने धनी लोगों को सौंपने की मुहिम की शुरुआत अस्सी के दशक के शुरू से नव उदारवादी उभार के साथ मानी जा सकती है। 1986 में (राजीव गांधी के शासन काल में) शिक्षा मंत्रालय का नाम बदल कर मानव संसाधन विकास मंत्रालय कर दिया गया। यही वो समय भी है जब विश्व बैंक उपलब्ध साधनों के बेहतर उपयोग के नाम पर सरकार के शिक्षा क्षेत्र से हटने की वकालत कर रहा था और कह रहा था कि "छात्र अपनी फीस खुद निकालें, सरकारें शिक्षा ऋण शुरू करें"। और अर्थव्यवस्था में आ रहे बदलाव के चलते यहाँ के पूंजीपतियों को भी शिक्षा के क्षेत्र में अकूत मुनाफे की संभावनाएं दिखाई देने लगी। 2002 में बिड़ला अम्बानी टास्क फोर्स की शिक्षा सम्बन्धी रिपोर्ट ने स्पष्ट रूप से कहा कि शिक्षा क्षेत्र बेहद फायदेमंद बाजार है और उस पर निजी पूंजीपतियों का कब्जा होना चाहिए। रिपोर्ट का मानना है कि "जो उपभोग करे वो खर्च उठाये। उच्च शिक्षा में पूरे खर्च की वसूली की ओर क्रमश: बढ़ा जाय और स्ववित्तपोषी निजी क्षेत्र को आगे आने को लिए प्रोत्साहित किया जाय।"

इस नीति का नतीजा क्या है इसके लिए दिल्ली का उदहारण लिया जा सकता है। पिछले साल दिल्ली क्षेत्र में करीब 270000 छात्रों ने कक्षा 12 की परीक्षा दी थी (इस साल लगभग तीन लाख छात्र परीक्षा देंगे) जिसमें से दो लाख से ऊपर छात्र पास हुए। लेकिन दिल्ली में सरकारी संस्थाओं में मुश्किल से एक लाख छात्रों के दाखिले की सुविधाएँ हैं। और दिल्ली के सरकारी कॉलेजों पर देश के अन्य हिस्सों से आने वाले छात्रों का बोझ भी होता ही है। यह एक दुखद सच्चाई है की दिल्ली की आबादी में बेतहाशा वृद्धि के बावजूद पिछले कई सालों से दिल्ली में कोई सरकारी कॉलेज नहीं खुला है। जबकि 'आप' की सरकार ने वादा किया था की वो 20 कॉलेज खोलेंगे और दिन में चल रहे कॉलेजों में संध्या की कक्षाएं खोलेंगे। पर कोई नतीजा नहीं। ऐसे में पढ़ने के इच्छुक ज्यादातर विद्यार्थियों के सामने दो ही रास्तें हैं या तो रंग बिरंगी निजी दुकानों में दाखिला ले या पत्राचार कार्यक्रम के जरिये अपनी पढाई जारी रखे।।

पाठकों को यह जानकर आश्चर्य नहीं होना चाहिए की आज दिल्ली के विभिन्न पत्राचार कार्यक्रमों में लाखों छात्र पढ़ रहे हैं और निजी विश्वविद्यालयों के विज्ञापनों की न केवल अखबारों में बल्कि दिल्ली की दीवारों पर भरमार है। और आने वाले समय में यह और बढ़ेगी। पत्राचार कार्यक्रमों से पढाई कोई आसान नहीं हैं क्योंक वह स्वयं अध्ययन का ही एक रूप है और यह भी सच है की पत्राचार कार्यक्रमों से पढ़े छात्रों की क्षमताओं को रोजगार के बाजार में कम कर के आँका जाता है। लेकिन इन निजी दुकानों पर पढ़ना सबके लिए संभव नहीं है। कारण यहाँ फीस इतनी ज्यादा है की बिना ?? के कोई उनमे पढ़ ही नहीं सकता। दिल्ली की सरहद में ही खुले दो निजी विश्वविद्यालयों की फीस इस प्रकार है।

अशोक यूनिवर्सिटी सोनीपत में बी ए की प्रति वर्ष फीस निम्न है-

ट्यूशन	7,00,000
निवास शुल्क	1,25,000
सुरक्षा जमा	50,000
प्रवेश शुल्क	35,000

कुल रुपये केवल 9,10,000 सालाना (भोजन शुल्क अतिरिक्त)

इसी प्रकार एक और विश्वविद्यालय, ओ पी जिंदल विश्वविद्यालय सोनीपत, की फीस सालाना फीस 650000 रुपये है। आवेदन शुल्क, निवास शुल्क, भोजन और कपड़े धोने का खर्च अतिरिक्त होगा।

इसका अर्थ हुआ की इन जगहों पर यदि पढ़ना है तो किसी भी छात्र के अभिभावक को बीए की डिग्री के लिए कम से कम 25 से 30 लाख रुपये खर्च करना होगा। अब यह कोई राकेट विज्ञान नहीं है की जिस देश में सालाना प्रतिव्यक्ति आय एक लाख रुपये के आस पास हो (2017-2018 में 1,11,782 रुपये) वहां इतनी मोटी फीस की मांग आम जन की पहुँच से बहार है।

यह सही है की सभी निजी शिक्षण संस्थाएं इतनी महंगी नहीं हैं पर फिर भी ज्यादातर लोगों के लिए यदि ऐसी जगह पढ़ना है तो ?? लेना ही होगा। और इसका क्या मतलब होता है यह यदि समझना है तो हमें अमरीका का उदहारण देखना होगा। वहां औसतन बी ए पास छात्र के ऊपर 35000 डॉलर (20 से 25 लाख रुपये) का कर्ज है जब की एमए पास छात्र के ऊपर 75000 डॉलर (45 से 50 लाख रुपये) का कर्ज है। जानकर लोगों का कहना है की यदि इससे ज्यादा लम्बा कोर्स करना हो तो कर्ज की मात्र ज्यादा हो सकती है। इतने भारी कर्ज के बोझ के साथ जिन्दगी शुरू करना कोई बहुत आकर्षक नहीं ही होता है। इसलिए वहां एक नए किस्म की गुलामी का उदय हुआ है। कर्ज के बोझ से मुक्त होने के लिए "सभी किस्म की सेवा" उपलब्ध कराने वाले लड़के और लड़कियां sugar mummy या sugar daddy खोज लेते हैं जो उस सेवा के बदले में इन्हें पैसा उपलब्ध करते हैं। इस कार्य में मदद करने के लिए कई वेबसाइट्स काफी लोकप्रिय हैं। हिंदुस्तान में यह प्रवृति अपनी शुरुआती चरण में है परन्तु यदि सरकार शिक्षा के अवसर उपलब्ध नहीं कराती तो यह प्रवृत्ति बढ़ेगी और हावी होगी। और यह देश की तरुणाई या देश के भविष्य के प्रति बहुत आशावादी सम्भावना नहीं है।

शायद महाप्राण निराला ने जो आजादी के समय सपना संजोया था वो आने वाले कई दशकों तक यूँ ही अधूरा रहेगा। उन्होंने कहा था

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ ,आओ ,आओ
आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला ,
धोबी ,पासी ,चमार ,तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला ,
एक पाठ पढेंगे ,टाट बिछाओ।

बी. जे. पी. के अनपढ़ और अलीगढ मुस्लिम यूनिवर्सिटी

फ़रीदाबाद (म.मो.) बीजेपी ने अपने अनपढ़ बजरंगी, युवा वाहिनी और उतने ही अनपढ मीडिया चैनलों के जरिये ए.एम.यू. में जिन्ना की तस्वीर को एक मुद्दा और देश भक्ति का टेस्ट बनाने में पूरी ताकत झोंक रखी है। इस विषय पर काफ़ी कुछ लिखा जा चुका है।

इस सारी साजिश की शुरूआत बीजेपी के अलीगढ़ से सांसद सतीश गौतम ने की। उनहोंने चिट्ठी लिख कर ए. एम. यू से पूछा कि मुझे पता चला है कि ए. एम. यू में कहीं जिन्ना की तस्वीर लगी है। यह कहां लगी है और इसे हटवायें। अब इसे अनपढता नहीं तो क्या कहें। बजाये ए. एम. यू. में जाकर तस्वीर का पता करके केन्द्र सरकार को उसे हटाने के लिये लिखने के (क्योंकि ए. एम. यू. एक सैन्ट्रल यूनिवर्सिटी है) उन्होंने ए.एम.यू. को लिखा और चिट्ठी जारी कर दी मीडिया को ताकि अनपढ़ बजरंगी और संघी उस पर हल्ला कर के हिंदू मुस्लिम का जहर भरा खेल खेल सकें।

इन सतीश गौतम से कोई जाके ये पूछे कि भाई साहब आप अपने संसदीय क्षेत्र की इस विख्यात यूनिवर्सिटी में कितनी बार गये। क्या आपने कभी पता किया कि इसमें कहीं टीचरों की कमी तो नहीं, इसमें छात्रावास, लाइब्रेरी, प्रयोगशालाओं में किसी तरह की आर्थिक या अन्य मदद की जरूरत तो नहीं। यानी इसमें जाना तो दूर उसके लिये चिट्ठी भी लिखी तो उसकी बेहतरी के लिये नहीं उसको बर्बाद करने के लिये।

ठीक भी है इनको और इनकी गुंडा वाहिनी को पढाई से क्या मतलब। जे एन यू, हैदराबाद, जादवपुर, जामिया मिलिया जैसे पढाई के हर शिखर संस्थान को किसी भी बहाने से बर्बाद करने की ऐसी कोशिश तो कोई मूर्ख ही कर सकता है।

हत्याओं की आशंका के बीच पत्रकार की आप से दो टूक बात...

नितिन ठाकुर

मुझे मालूम है कि पत्रकार लिखा देखकर आप टाइमलाइन स्क्रॉल करने लगेंगे। मुझे मालूम है कि पत्रकार की पिटाई की खबर अब आपको मज़ा देती है। मुझे मालूम है कि पत्रकार की मौत आपके मन में अब फिक्र नहीं जगाती। मैं ये भी जानता हूं कि मीडिया बिक गया है के शोर में अब आप ईमानदार पत्रकारों तक पर रियायत नहीं बरतते। मुझे पता है कि रोज़ अखबार पढ़ना या समाचार देखना अब जागरुकता के पैमाने नहीं रहे। मुझे अहसास है कि सियासत की कीचड़ जबसे पत्रकारिता के दामन पर लगी है तब से आम लोगों में पत्रकार की हैसियत 'दलाल' भर की रह गई है।

मुझे ये सब कुछ मालूम है मगर ये गुमान मत पाल लीजिए कि कहानी इतनी ही है और आपको सारी ही पता है।

क्या आपको पता है कि भारत पत्रकारों की सुरक्षा और काम के लिहाज़ से दुनिया में सबसे खराब रैंकिंग वाले देशों में शामिल है। ये रैंकिंग तभी खराब हो सकती है जब आपके देश में पत्रकारों के साथ वो रवैया ना हो रहा हो जिसके वो हकदार हैं।

रैंकिंग खराब होने के कारणों में पत्रकारों को धमकाना, घूस देना या हत्या करवाना तक शामिल है। इसी साल संयुक्त राष्ट्र महासचिव एंटोनियो गुटेरेस भारत में पत्रकारों की हत्या पर चिंता ज़ाहिर कर चुके हैं। पत्रकारिता करने के लिहाज़ से भारत आज तक की अपनी सबसे बदतरीन रैंकिंग (180 में से 138 नंबर) पर जा पहुंचा है। हमसे बेहतर देशों के नाम जानेंगे तो खामख्वाह शर्मिंदगी होगी।

क्या आपको पता है कि इस साल अब तक देश के तीन पत्रकार अपने काम को ईमानदारी और निष्ठा से करने की वजह से मारे जा चुके हैं।

क्या आपको पता है कि पिछले साल यानी 2017 में निडर होकर पत्रकारिता करते हुए 12 पत्रकारों की जान चली गई थी। इसके मुकाबले पाकिस्तान जैसे मुल्क में भारत में कम 7 पत्रकारों की हत्या हुई। क्या आपको पता है कि साल 2016 में दुनियाभर के 93 पत्रकारों को मार डाला गया था जिनमें से 5 वारदातें तो अकेले भारत में हुईं। ग्लोबल एडवोकेसी ग्रुप के रिपोर्टर विदाउट बॉर्डर्स ने भारत को "पत्रकारों के लिए एशिया का सबसे खतरनाक देश" बताया था।

जर्मन वेबसाइट डॉयचे वेले लिखती है कि एक रिपोर्ट के मुताबिक पिछले दस सालों में पत्रकारों की मौत का एक मामला भी नहीं सुलझा है। ये वो मामले हैं जहां स्पष्ट हुआ कि पत्रकार को मारा इसीलिए गया क्यों कि वो अपना काम कर रहा था, इसके अलावा ऐसी भी घटनाएं होती हैं जहां ये कभी साफ ही नहीं हो पाता कि कोई पत्रकारिता की वजह से मारा गया। हाल ही में मध्यप्रदेश के भिंड जिले में मोटरसाइकिल सवार पत्रकार संदीप शर्मा को ट्रक ने जैसे कुचला, और बिहार के भोजपुर में पत्रकार नवीन निश्चल - विजय सिंह की वाहन से कुचले जाने पर जिस तरह मौत हुई उस पर अगर पुलिस ठीक से जांच ना करे तो सड़क दुर्घटना कह कर मामला बंद भी किया जा सकता है।

पेरिस में स्थित Reporters Without Borders नाम के मशहूर स्वतंत्र एनजीओ जिसकी शाखाएं 130 देशों में फैली हैं, ने भारत के पत्रकारों के लिए खतरे की घंटी बजा दी है। वो अपने पेज पर भारत के बारे में लिखता है कि हिंदू राष्ट्रवादियों के दबाव में मुख्यधारा के मीडिया ने खुद पर सेंसरशिप लागू कर लिया है। पत्रकारों पर ऑनलाइन कैंपेन चलाकर हमला करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है जहां हिंदू कट्टरपंथी शारीरिक नुकसान पहुंचाने तक की धमकी दे डालते हैं। संस्था का पेज दोटूक लिखता है कि कश्मीर जैसी जगहों को कवर कर पाना पत्रकारों के लिए मुश्किल बनता जा रहा है।

ये संस्था भारत सरकार को बदनाम करने के लिए खास तौर पर नहीं बनाई गई है (जैसा कुतर्क भरा काउंटर इस पोस्ट को पढ़ने के बाद आईटी सेल वाले करेंगे)। इस संस्था का काम दुनिया भर की उन सरकारों को चुभता है जो पत्रकारों को दुम हिलाते देखने की इच्छुक हैं।

भारत में पत्रकारों की हत्याओं से कुछ बातें एकदम साफ हैं। एक तो यही कि भ्रष्टाचार उजागर करनेवाले पत्रकार सबसे ज़्यादा मारे जाते हैं, दूसरा ये कि सरकार या नेताओं से असहमति रखनेवाले पत्रकार सबसे ज़्यादा ऑनलाइन ट्रोलिंग और धमकियों के शिकार बनते हैं। इस साल जिन तीन पत्रकारों की हत्या हुई है उन्होंने तो पहले से अपनी मौत का अंदेशा जता रखा था। कुछ मामलों में तो पुलिस से पहले ही ऐसी किसी घटना को लेकर शिकायत कर दी गई थी, लेकिन अंत हत्या से ही हुआ।

ये सारी बात तो सिर्फ उनकी है जिन्होंने जान गंवा दी। उनकी बात तो की ही नहीं जा रही जिन पर दबाव बनाने के लिए मुकदमे दर्ज किए जाते हैं और जेलयात्रा करवा दी जाती है। उदाहरण के तौर पर छत्तीसगढ़ को ले लीजिए जहां पिछले साल 14 पत्रकारों को गिरफ्तार किया गया था। हाल ही में नक्सलियों के सामने पानी भरनेवाली छत्तीसगढ़ पुलिस ने दलबल के साथ गाज़ियाबाद के पत्रकार विनोद वर्मा को गिरफ्तार करके 60 दिन तक जेल में रहने को मजबूर किया। कर्नाटक में भी विधायकों के खिलाफ अपमानजनक लेख लिखने के मामले में कन्नड़ पत्रिका के दो पत्रकारों पर कार्रवाई की गई थी। ममता बनर्जी का जब तब पत्रकारों पर कोड़े बरसाना आम है। केंद्रीय मंत्री स्मृति ईरानी हाल ही में फेक न्यूज़ रोकने की आड़ में मीडिया पर दबाव बनाने की कोशिश में मुंह की खा चुकी हैं।

इतना सब देखने के बावजूद अगर रवीश कुमार चौतरफा ट्रोलिंग और स्टाकिंग से परेशान होकर कुछ लिख दें तो उन्हें एटेंशन सीकर और पागल कह कर मामले को हल्का किया जाता है। ये वही देश है जहां गौरी लंकेश या दाभोलकर को सोशल मीडिया पर धमकियों के बाद आराम से मार डाला गया, लेकिन अभी भी कुछ लोग हैं जो या तो मूर्ख बने रहना चाहते हैं या फिर हल्की बातें कह कर तब तक मामले की गंभीरता को टालना चाहते हैं जब तक पत्रकार की हत्या ही ना हो जाए। इसमें रवीश जैसों के वैचारिक विरोधी ही नहीं, बल्कि पेशेगत प्रतिद्वंद्वी और ईर्ष्यालु तत्व भी शामिल हैं।

देश में तमाम राजनीतिक दल अपनी ऑनलाइन सेना के साथ मैदान में हैं। बात पसंद न आने पर न सिर्फ ये नकली स्क्रीन शॉट से पत्रकारों के जीवन को खतरे में डालते हैं बल्कि उनके नंबरों को सार्वजनिक करके धमकियां देते-दिलवाते हैं।

मैं पत्रकार होने के नाते साफ- साफ अपने जीवन का डर यहां लिख देना चाहता हूं। ये ज़रूरी इसलिए है ताकि कल अगर हमारी भी हत्या हो जाए तो आप लोगों को याद रहे कि हम अपनी हत्याओं की आशंका से कभी अनजान नहीं थे, और बावजूद इसके उनके खिलाफ लिखने का खतरा मोल लेते रहे जिनके शासन में बने खराब माहौल के दौरान भारत की पत्रकारिता 138वें नंबर पर सिसकने को मजबूर रही। आगे मरज़ी आपकी है कि जैसा माहौल पत्रकारों के लिए बन गया है, वैसा ही आपके लिए बनने तक आप इंतज़ार करेंगे या इससे इनकार करेंगे।